झारखण्ड उच्च न्यायालय, रांची

सिविल रिट याचिका – **1206/2015**

राम केवल मिस्त्री ..... **याचिकाकर्ता**

-बनाम-

1. झारखंड राज्य

2. पुलिस महानिदेशक, रांची।

3. पुलिस उप महानिरीक्षक, संथाल परगना रेंज, दुमका।

4. पुलिस अधीक्षक, साहिबगंज। ..... **प्रतिवादी**।

न्यायालय: माननीय न्यायमूर्ति डॉ. एस.एन.पाठक

याचिकाकर्ता की ओर से: श्री सुधाकर पांडे, अधिवक्ता
प्रतिवादियों की ओर से: सुश्री अमृता बनर्जी, ए.सी टू जी.पी-I।

06/13.02.2024: पक्षों की बात सुनी।

2. याचिकाकर्ता ने दिनांक 30.08.2012 के दण्ड आदेश को चुनौती दी है जिसके तहत याचिकाकर्ता को एक ब्लैक मार्क की सजा दी गई है जो छह महीने के लिए वेतन वृद्धि रोकने के बराबर है और दिनांक 05.02.2014 के अपीलीय आदेश को चुनौती दी है जिसके तहत दण्ड आदेश की पुष्टि की गई है।

3. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि जब याचिकाकर्ता साहेबगंज टाउन थाना में पुलिस के सहायक उपनिरीक्षक के पद पर पदस्थापित था, तो कार्यालय आदेश दिनांक 13.01.2012 के तहत उसे इस आधार पर निलंबित कर दिया गया था कि उसने अपने कर्तव्यों का पालन तत्परता से नहीं किया। इसके बाद, आरोप पत्र जारी होने के बाद विभागीय कार्यवाही शुरू की

गई और याचिकाकर्ता से स्पष्टीकरण देने को कहा गया। इसके बाद, जांच अधिकारी ने जांच करने के बाद याचिकाकर्ता को आरोपों का दोषी मानते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। जांच रिपोर्ट के आधार पर अनुशासनिक प्राधिकार ने एक ब्लैक मार्क का दंड देने का आदेश पारित किया, जो छह महीने की वेतन वृद्धि रोकने के बराबर है। उक्त दंड आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने पुलिस अधीक्षक के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया और उसे अपील के रूप में माना गया और पुलिस उप महानिरीक्षक, संथाल परगना रेंज, दुमका को संदर्भित किया गया। इसके बाद, याचिकाकर्ता के मामले को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री में विचार किए बिना, अपीलीय प्राधिकार ने दंड के आदेश की पुष्टि की।

उक्त आदेशों को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

4. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुधाकर पाण्डेय ने जोरदार ढंग से तर्क दिया कि आरोपित आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हैं। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि केवल जांच रिपोर्ट के आधार पर अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा दण्ड दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत बचाव पर विचार किए बिना अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा दिए गए दण्ड के आदेश की यांत्रिक पुष्टि की है। इस प्रकार, आरोपित आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हैं तथा इन्हें रद्द करने तथा अपास्त करने योग्य हैं। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं तथा इसलिए दण्ड आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हैं तथा इन्हें रद्द करने तथा अपास्त करने योग्य हैं। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त तथ्यों तथा कारणों से, आरोपित आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हैं तथा इन्हें रद्द करने तथा अपास्त करने योग्य हैं तथा प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में पुनः नियुक्त करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

5. प्रतिवादी राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वकील ने याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की दलील का पुरजोर विरोध करते हुए कहा कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी का आदेश जांच रिपोर्ट पर विचार करने के बाद पारित किया गया था, इसलिए बाद में अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई थी। विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि पुलिस बल में अनुशासनहीनता बर्दाश्त नहीं की जा सकती। विभागीय कार्यवाही में याचिकाकर्ता

द्वारा कोई गड़बड़ी नहीं बताई गई है और पूरी कार्यवाही प्रक्रिया का पालन करते हुए समाप्त हुई है। चूंकि याचिकाकर्ता को आरोपों का दोषी पाया गया है, इसलिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने सही ढंग से सजा दी है और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई है। विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत बैठा यह न्यायालय साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की प्रतिद्वंद्वी दलीलें सुनने और अभिलेख पर लाए गए दस्तावेजों के अवलोकन के बाद, यह न्यायालय इस विचार पर पहुंचा है कि निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है:

i. जांच अधिकारी के निष्कर्षों पर विचार किया गया और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा ठोस और वैध कारण बताते हुए दंड आदेश पारित किया गया। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई, जिसके लिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

ii. ऐसा कुछ भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है जिससे पता चले कि कार्यवाही में कोई प्रक्रियात्मक लापरवाही थी, बल्कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर देकर प्राकृतिक न्याय के प्रावधानों का पालन करते हुए पूर्ण जांच की गई थी।

iii. बेशक, जब दंड का आदेश अपीलीय प्राधिकारी तक पुष्टि हो गई थी, तो यह न्यायालय उसमें हस्तक्षेप करने से खुद को रोकता है।

iv. याचिकाकर्ता अनुशासित बल का सदस्य है और उससे अपने कर्तव्यों का तत्परता और ईमानदारी से पालन करने की अपेक्षा की जाती है। जांच रिपोर्ट और आरोपों के ज्ञापन से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर पीड़ितों की मदद नहीं की।

v. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का यह तर्क कि उसे कई पुरस्कार दिए गए हैं, इस न्यायालय को स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं लाया गया है जिससे यह पता चले कि उसे कितने और कब पुरस्कार दिए गए, जैसा कि उसने दावा किया है।

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1995) 6 एससीसी 749** के मामले में इस प्रकार निर्णय दिया है:

> "उच्च न्यायालय अपीलीय अधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। इसका अधिकार क्षेत्र न्यायिक समीक्षा की सीमाओं से घिरा हुआ है, जो कानून की त्रुटियों या प्रक्रियात्मक त्रुटियों को ठीक करने के लिए है, जो स्पष्ट अन्याय या प्राकृतिक न्याय

के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हैं। न्यायिक समीक्षा अपीलीय अधिकारी के रूप में योग्यता के आधार पर किसी मामले के निर्णय के समान नहीं है।"

(ii) सामग्री की अपर्याप्तता जांच अधिकारी के निष्कर्षों को रद्द करने का आधार नहीं हो सकती है, न ही विभागीय कार्यवाही के मामलों में जांच अधिकारी/अनुशासनात्मक अधिकारी के स्थान पर कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अपैरल एक्सपोर्ट प्रमोशन काउंसिल बनाम ए.के. चोपड़ा मामले में (1999) 1 एससीसी 759** में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

16. ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस स्थापित स्थिति को नजरअंदाज कर दिया है कि विभागीय कार्यवाही में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश होता है और यदि अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील प्रस्तुत की जाती है, तो अपीलीय प्राधिकारी के पास साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और तथ्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने की शक्ति/और अधिकार क्षेत्र भी होता है, क्योंकि वह एकमात्र तथ्य-खोजी प्राधिकारी होता है। एक बार साक्ष्य की सराहना के आधार पर तथ्य के निष्कर्ष दर्ज हो जाने के बाद, रिट अधिकार क्षेत्र में उच्च न्यायालय सामान्यतः उन तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है जब तक कि उसे यह न लगे कि दर्ज किए गए निष्कर्ष या तो किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं थे या निष्कर्ष पूरी तरह से विकृत और/या कानूनी रूप से अस्थिर थे। साक्ष्य की पर्याप्तता या अपर्याप्तता पर उच्च न्यायालय के समक्ष बहस करने की अनुमति नहीं है। चूंकि उच्च न्यायालय विभागीय कार्यवाही के दौरान दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्षों पर अपीलीय प्राधिकरण के रूप में नहीं बैठता है, इसलिए न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय, सामान्य रूप से, विभागीय अधिकारियों के निष्कर्ष के स्थान पर अपराधी के दोष के संबंध में अपना निष्कर्ष नहीं दे सकता है। यहां तक कि जहां तक दंड या सजा लगाने का संबंध है, जब तक कि अनुशासनात्मक या विभागीय अपीलीय प्राधिकरण द्वारा लगाया गया दंड या जुर्माना या तो अस्वीकार्य हो या ऐसा हो कि यह उच्च न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर दे, उसे सामान्य रूप से अपनी राय को प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए और कोई अन्य दंड या जुर्माना नहीं लगाना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ दोनों ने इस सुस्थापित सिद्धांत की अनदेखी की है कि यद्यपि प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा लचीली होनी चाहिए और उसका आयाम बंद नहीं होना चाहिए, फिर भी न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायालय तथ्यों के निष्कर्षों की सत्यता से चिंतित नहीं है जिसके आधार पर आदेश दिए गए हैं, जब तक कि उन निष्कर्षों को साक्ष्य द्वारा उचित रूप से समर्थित किया जाता है और उन कार्यवाहियों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है जिनमें प्रक्रियागत अवैधताओं या अनियमितताओं के लिए दोष नहीं लगाया जा सकता है जो उस प्रक्रिया को

दूषित करती हैं जिसके द्वारा निर्णय लिया गया था। यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक समीक्षा निर्णय के विरुद्ध निर्देशित नहीं होती है, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया की जांच तक ही सीमित होती है। चीफ कांस्टेबल ऑफ द नॉर्थ वेल्स पुलिस बनाम इवांस1 में लॉर्ड हेलशैम ने कहा:

"न्यायिक समीक्षा का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को उचित व्यवहार मिले, न कि यह सुनिश्चित करना कि प्राधिकरण, उचित व्यवहार करने के बाद, किसी ऐसे मामले पर, जिसके लिए उसे कानून द्वारा स्वयं निर्णय लेने के लिए अधिकृत या बाध्य किया गया है, ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचे जो न्यायालय की दृष्टि में सही हो।

22. इस मामले के स्थापित तथ्यों और परिस्थितियों में, हमें शुरू में यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ दोनों ने विभागीय अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने और दंड की मात्रा में हस्तक्षेप करने में स्पष्ट त्रुटि की, जैसे कि उच्च न्यायालय अपीलीय क्षेत्राधिकार में बैठा था। विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ के निर्णयों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विभागीय अधिकारियों द्वारा प्रतिवादी द्वारा किए गए "अनुचित कृत्य" के संबंध में निष्कर्ष, साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन पर भी दोषपूर्ण नहीं पाए गए। उच्च न्यायालय ने यह नहीं पाया कि शिकायतकर्ता द्वारा आरोपित घटना घटित नहीं हुई थी। न तो विद्वान एकल न्यायाधीश और न ही खंडपीठ ने यह पाया कि जांच अधिकारी या विभागीय अपीलीय प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष मनमाने या यहां तक कि विकृत थे। वास्तव में, उच्च न्यायालय ने जांच के संचालन में कोई भी दोष नहीं पाया। विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्देश कि प्रतिवादी पिछले वेतन का हकदार नहीं था और उसे कम से कम दो साल के लिए शहर से बाहर तैनात किया जाना था, जिसे डिवीजन बेंच ने बरकरार रखा, यह अपने आप में दर्शाता है कि उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता के मामले को पूरी तरह से माना, अन्यथा न तो पिछले वेतन को रोकना और न ही प्रतिवादी को कम से कम दो साल के लिए शहर से बाहर तैनात करने का निर्देश देना आवश्यक था। हमारे विचार में उच्च न्यायालय ने उस दंड में हस्तक्षेप करने में गलती की, जिसे विभागीय अधिकारियों द्वारा प्रतिवादी पर उसके सिद्ध कदाचार के लिए वैध रूप से लगाया जा सकता था। यह मानना कि चूंकि प्रतिवादी ने मिस एक्स के साथ "वास्तव में छेड़छाड़" नहीं की थी और उसने केवल "छेड़छाड़ करने की कोशिश" की थी और उसके साथ शारीरिक संपर्क बनाने में "सफल नहीं हुआ", इसलिए सेवा से हटाने की सजा उचित नहीं थी, गलत थी। उच्च न्यायालय को प्राधिकारी के विवेक के स्थान पर अपना विवेक नहीं अपनाना चाहिए था। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, जो सजा दी जानी थी, वह एक ऐसा मामला था जो पूरी तरह से सक्षम प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में आता था और उच्च न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी। उच्च

न्यायालय का पूरा दृष्टिकोण दोषपूर्ण रहा है। उच्च न्यायालय के विवादित आदेश को केवल इसी आधार पर बरकरार नहीं रखा जा सकता। लेकिन मामले का एक और पहलू है जो मौलिक है और मामले की जड़ तक जाता है और महिला कर्मचारियों के कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के मामलों से निपटने के दौरान न्यायालय के दृष्टिकोण से संबंधित है।

8. इसके अलावा, भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. गुनासेकरन के मामले में, (2015) 2 एससीसी 610 में रिपोर्ट की गई, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि, "उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 और 227 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए साक्ष्य की सराहना करने या जांच कार्यवाही में निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का जोखिम नहीं उठा सकता है यदि वे कानून के अनुसार किए गए हैं, या साक्ष्य की विश्वसनीयता/पर्याप्तता में जा सकते हैं, या यदि निष्कर्षों पर कुछ कानूनी सबूत आधारित हैं तो हस्तक्षेप कर सकते हैं, या तथ्य की त्रुटि को सही कर सकते हैं, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न हो, या सजा की आनुपातिकता में जा सकते हैं जब तक कि यह अदालत की अंतरात्मा को झकझोर न दे"।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बिहार राज्य एवं अन्य बनाम फूलपरी कुमारी, रिपोर्ट (2020) 2 एससीसी 130** के मामले में निम्नानुसार माना है:

> "**6.** प्रतिवादी के खिलाफ आपराधिक मुकदमा अभी भी एक सक्षम आपराधिक अदालत द्वारा विचाराधीन है। प्रतिवादी की सेवा से बर्खास्तगी का आदेश उसके खिलाफ आयोजित विभागीय जांच के अनुसार था। जांच अधिकारी ने साक्ष्य की जांच की और निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी द्वारा अवैध रिश्वत की मांग और स्वीकृति का आरोप साबित हुआ। विद्वान एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती की कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य प्रतिवादी के अपराध को इंगित करने के लिए पर्याप्त नहीं थे:
>
> > **6.1.** यह स्थापित कानून है कि विभागीय जांच के तहत पारित आदेशों में हस्तक्षेप केवल "कोई सबूत नहीं" होने की स्थिति में ही किया जा सकता है। साक्ष्य की पर्याप्तता न्यायिक समीक्षा के दायरे में नहीं आती है। आपराधिक मुकदमे में आवश्यक सबूत का मानक विभागीय जांच में समान नहीं है। आपराधिक न्यायालय द्वारा साक्ष्य के सख्त नियमों का पालन किया जाना चाहिए, जहां अभियुक्त के अपराध को उचित संदेह से परे साबित किया जाना है। दूसरी ओर, संभाव्यता की प्रबलता वह परीक्षण है जिसे अपराधी को आरोप का दोषी पाते समय अपनाया जाता है।
> >
> > **6.2.** उच्च न्यायालय को सबूतों की पुनः जांच करके और जांच अधिकारी के

निष्कर्षों पर आधारित अनुशासनात्मक प्राधिकारी के दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण अपनाकर प्रतिवादी की बर्खास्तगी के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था।

चूंकि आरोप अनुशासनहीनता और कर्तव्यों की उपेक्षा से संबंधित हैं, इसलिए इस न्यायालय का मानना है कि प्रतिवादियों द्वारा छह महीने के लिए एक वेतन वृद्धि रोकने की सजा देने में कोई अवैधता या कोई दुर्बलता नहीं की गई है। पुलिस बल एक अनुशासित बल है और प्रत्येक पुलिस कर्मी को अत्यधिक अनुशासन बनाए रखना आवश्यक है। थोड़ी सी भी अनुशासनहीनता दंडनीय है।

10. उपरोक्त टिप्पणियों, न्यायिक घोषणाओं और कानूनी प्रस्तावों के अनुक्रम में, रिट याचिका खारिज करने योग्य है और इसे खारिज किया जाता है।

(न्यायमूर्ति डॉ. एस.एन.पाठक)

यह अनुवाद सुश्री लीना मुखर्जी, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।